भारतीय कृषि की ज्वलंत समस्या
भूमि क्षरण

अजय दीप सिंह कौरव
स्नातक छात्र,
स्कूल ऑफ एग्रीकल्चर, आई.टी.एम. यूनिवर्सिटी ग्वालियर (म.प्र.)

सारांश

मानव जगत और जीव-जंतुओं के अस्तित्व के लिए न केवल भूमि का वैज्ञानिक ढंग से अधिकतम सदुपयोग अनिवार्य है, अपितु इसकी समुचित सुरक्षा करना भी उतना ही आवश्यक है। भूमि क्षरण या मृदा अपरदन के परिणामस्वरूप उपजाऊ भूमि भी कृषि के अयोग्य हो जाती है। भारतीय भू-वैज्ञानिकों का मानना है कि आगामी बीस वर्ष तक यही स्थिति रही तो एक तिहाई कृषि भूमि पूर्णतः नष्ट हो जाएगी। देश में भूमि क्षरण को रोकने के लिए जहाँ एक ओर परंपरागत उपायों यथा-वृक्षारोपण, बाँध निर्माण, बाढ़, नियन्त्रण, मेड़बंदी, नियंत्रित पशु चराई आदि का विस्तार करना जरूरी है, वहीं दूसरी ओर आधुनिक एवं अनुसंधान आधारित उपायों यथा-मल्चिंग पद्धति, स्ट्रिप क्रोपिंग, मिश्रित खेती, सतही जुताई तथा कंटूर खेती आदि को अपनाना भी अति आवश्यक है। सांस्कृति विरासत संरक्षण की अवधारणा और सामाजिक सहभागिता का दृष्टिकोण भी भूमि, वन, पर्वत एवं पेड़ आदि के संरक्षण में निर्णायक भूमिका अदा कर सकता है।

सृजन एवं पोषण की सामर्थ्य रखने वाली भूमि को समस्त प्राणी-जगत के अस्तित्व का आधार और अनेक अनुपम उपहार प्रदान करने वाली रत्न प्रसवा कहा जाता है। भारतीय संस्कृति में भूमि को माता का स्थान दिया गया है। अतः मानव जगत और जीव-जंतुओं के अस्तित्व के लिए न केवल भूमि का वैज्ञानिक ढंग से अधिकतम सदुपयोग अनिवार्य है, अपितु इसकी समुचित सुरक्षा करना भी उतना ही आवश्यक है। भारतवर्ष जैसे कृषि प्रधान और जनसंख्या

बहुल राष्ट्र में उचित भूमि प्रबंध और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। किंतु राष्ट्रीय स्तर पर भूमि प्रबंधन नीति की अव्यावहारिकता के कारण भारतीय कृषि, भूमि से संबंधित अनेक समस्याओं से ग्रसित हो चुकी है जिनमें भूमिक्षरण की समस्या एक प्रमुख एवं ज्वलंत समस्या है।

भूमिक्षरण या मृदा अपरदन से भूमि की ऊपरी मुलायम सतह और उर्वरा शक्ति इतनी तीव्र गति से नष्ट होती है कि उसका कोई तात्कालिक प्राकृतिक या कृत्रिम उपचार होना बहुत कठिन है, परिणामस्वरूप उपजाऊ भूमि भी कृषि के अयोग्य हो जाती है। भूमिक्षरण के दुष्परिणाम मात्र भूमि तक सीमित नहीं रहते अपितु इससे सम्पूर्ण मानव जाति और जीव-जंतु भी प्रभावित होते हैं। अतः भूमि क्षरण को भारतीय कृषि का क्षयरोग कहा जाता है। यह क्षयरोग कृषक की धीमी या रेंगती हुई मृत्यु बनकर उसके अस्तित्व को भी संकट में डाल रहा है।

यदि भूमिक्षरण की रोकथाम हेतु अभी से पर्याप्त उपाय नहीं किए गए तो आने वाले वर्षों में बाढ़, भूस्खलन आदि की समस्याएँ प्रखरतम बन कर सामने आयेंगी। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अनुसार वर्तमान में हमारे देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल बत्तीस करोड़ नब्बे लाख हेक्टेयर में से लगभग पंद्रह करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र को जल और वायुक्षरण का सामना करना पड़ रहा है।

इस भू भाग में से सात करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र भूमिक्षरण के कारण अत्यधिक गंभीर रूप से विकृत हो चुका है।

भारतीय भू-वैज्ञानिकों का मानना है कि देश में प्रति वर्ष सत्तर हजार वर्ग फीट भूमि एवं लगभग छः अरब टन मिट्टी का कटाव हो रहा है जो अपने साथ पौधों के लगभग नब्बे लाख टन प्रमुख उर्वरक और पोषक तत्वों को बहाकर ले जा रहा है। बढ़ते हुए भूमि क्षरण के कारण देश को प्रतिवर्ष तीन हजार करोड़ रुपए का नुकसान उठाना पड़ रहा है और आगामी बीस वर्ष तक यही स्थिति रही तो एक तिहाई कृषि भूमि पूर्णतः नष्ट हो जाएगी। वस्तुतः भूमि क्षरण में होने वाली उतरोत्तर वृद्धि से न केवल देश में कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल निरंतर कम होता जा रहा है, अपितु इससे भारतीय कृषि की फसलोत्पादकता पर भी नकारात्मक प्रभाव

पड़ रहा है।

हमारे देश में जहाँ एक ओर असम, झारखंड, बिहार तथा उत्तरांचल के पहाड़ी क्षेत्रों में धरातलीय भूमि क्षरण की समस्या कठिनाइयाँ उत्पन्न कर रही हैं, वहीं दूसरी ओर उत्तरी-पश्चिमी राजस्थान, पंजाब तथा हरियाणा के कुछ क्षेत्रों में वायु द्वारा भूमि क्षरण की समस्या भी गंभीर बनी हुई है।

कुछ भागों में तेज वर्षा के कारण वनस्पति रहित भूमि में जल धाराओं से छोटी-छोटी नालियाँ बन जाती है जो बाद में चौड़ी होकर नालीदार भूमि क्षरण का रूप ले लेती है। नालीदार भूमि क्षरण भूमि को गहरे और ऊबड़-खाबड़ बीहड़ों में परिवर्तित कर देता है, भारत में यमुना और चंबल के बीहड़ इसके ज्वलंत उदाहरण है जो मुरैना, धौलपुर, इटावा एवं आगरा के क्षेत्रों में मुख्य रूप से फैले हुए हैं।

निरंतर भूमि क्षरण के कारण देश की झीलों और विभिन्न नम भूमि क्षेत्रों का स्वरूप उत्तरोत्तर बिगड़ता जा रहा है। जहाँ एक ओर डल, ऊटी, भीमताल एवं सांभर आदि झीलों का आकार सिमटता जा रहा हैं वहीं दूसरीं ओर वर्षा जल को एकत्रित करने वाली विभिन्न स्थानों की आर्द्र भूमि विलुप्त होती जा रही है। कभी-कभी आँधी और तूफान के कारण मिट्टी उड़कर खड़ी फसल पर जमा हो जाती है और उसे नष्ट कर देती है।

जिन क्षेत्रों में निरंतर भूमिक्षरण बढ़ता जा रहा है, उन क्षेत्रों की भूमि, कृषि व अन्य कार्यों के अयोग्य होती जा रही है और जनसंख्या स्थानान्तरण और पुनर्वास की समस्या का कारण बन रही है।

यद्यपि भारत सरकार द्वारा देश में भूमि क्षरण को रोकने के लिए निरंतर प्रयास किये जाते रहे हैं किंतु आज भी भूमि क्षरण की समस्या अत्यंत गंभीर बनी हुई। अतः देश में भूमि क्षरण को रोकने के लिए जहाँ एक ओर परंपरागत उपायों यथा-वृक्षारोपण, बाँध निर्माण, बाढ़, नियन्त्रण, मेड़बंदी, नियंत्रित पशु चराई आदि का विस्तार करना जरूरी है, वहीं दूसरी ओर आधुनिक एवं अनुसंधान आधारित उपायों यथा-मल्चिंग पद्धति, स्ट्रिप क्रोपिंग, मिश्रित खेती, सतही जुताई तथा कंटूर खेती आदि को अपनाना भी अति आवश्यक है।

भू-वैज्ञानिकों के अनुसार समतल और इकहरी स्थलाकृति वाले क्षेत्रों में बहुत घास या झाड़ियों की पंक्तिबद्ध रोपाई, खस व रेशेदार पौधों का विस्तार आदि वनस्पति विषयक उपायों से भूमि कटाव की समस्या का समाधान किया जा सकता है। इनसे न केवल भूमिक्षरण को रोकने में मदद मिलती बल्कि ईंधन, चारे, भोजन तथा सुगंधित तेल आदि के उत्पादन में भी वृद्धि होती है तथा किसानों की आय भी बढ़ती है।

यदि हमारे देश में सरकारी प्रयास और जन-सहयोग के माध्यम से भूमि संरक्षण की उपर्युक्त अनुसंधान आधारित पद्धतियों को सुनियोजित और प्रभावोत्पादक तरीकों से लागू किया जाता है तो न केवल बढ़ते हुए भूमि क्षरण पर रोक लगेगी, बल्कि कृषि की उत्पादकता में भी वृद्धि होगी। सांस्कृति विरासत संरक्षण की अवधारणा और सामाजिक सहभागिता का दृष्टिकोण भी भूमि, वन, पर्वत एवं पेड़ आदि के संरक्षण में निर्णायक भूमिका अदा कर सकता है। ■